२६ जनवरी १९४८

प्रथम [१] पुष्प

मूल्य—नवआना

स्वतन्त्र भारत के स्वतन्त्र युग में आज कई साहित्य-संस्थाएं अपना प्रगतिशील प्रकाशन कर रही हैं, जिससे कि देश में आज साहित्य-प्रगति का प्रवाह एक सांस्कृतिक-क्रांति को लेकर प्रस्फुटित हो रहा है। यह हमारे राष्ट्र युग का स्वर्ण प्रभात है और इसी सुखद वेला ने 'आदर्श-साहित्य-संघ' को जन्म दिया है।

भारतीय संस्कृति और जैन-दर्शन के अनुकूल आदर्श धार्मिक और सांस्कृतिक साहित्य का प्रगतिशील प्रकाशन/आदर्श-साहित्य-संघ का मुख्य ध्येय है। और इसी ध्येय को लेकर संघ अपनी एक विस्तृत योजना के साथ भारतीय-राष्ट्र में एक ऐसे साहित्य की, कल्पना रखता है जो राष्ट्र के नैतिक, आत्मिक और सांस्कृतिक जीवन को बल दे सके और युग की सभी विचार-धाराओं का समन्वय करते हुए जन-मन में आध्यात्मिक शक्ति का सञ्चय करने में सफल हो सके, जिसका कि आज के साहित्य में अभाव सा है। जिसके कारण हमारे राष्ट्र की नैतिक व आत्मिक शक्तियां छिन्न भिन्न व एक दूसरे ही प्रवाह में बही जारही हैं। जिनका निरोध ऐसे ही साहित्य के आविर्भाव पर सम्भव है। जो हमारे स्वतन्त्र मानसिक विकास को कुण्ठित न करते हुए उसे वस्तुतः प्रगति पर संगठित कर सके। इस दिशा में यह एक प्रयत्न मात्र है। जो हम अपने पाठकों के समक्ष रख रहे हैं। आशा है, सुहृद पाठक और आत्म जिज्ञासु इसका स्वागत कर हमें प्रोत्साहित करेंगे, तो निसन्देह संघ आपकी सेवा करने में समर्थ हो सकेगा।

निवेदन

भारत एक जन शक्ति प्रधान देश है और उसका एक ऐतीहासिक सांस्कृतिक महत्व है। आज की राजनैतिक चेतना और क्रांति में भी भारत एशियाई प्रदेशों का केन्द्र बिन्दु रहा है, जहां कई राजनैतिक, सामाजिक व युगकालीन संस्थाएं अपने दृढ संगठन के साथ युग का निर्माण करने में संलग्न हैं। और जिनकी अपनी नई नई विचारधाराएं हैं। वहां भारत की अमर विभूतियों द्वारा प्रदत आध्यात्मिक शक्तियां और संस्कृति सपने वैयक्तिक विकास के साथ जन मन के कल्याण सम्पादन में अपनी अद्भुत आत्म साधना का परिचय दे रही है। जिनका अपना आध्यात्मिक संगठन है, और उसका एक विश्वस्त आदर्श है।

भारत आध्यात्मिक प्रेरणा का एक जागरूक केन्द्र रहा है और आज भी है। यद्यपि यह सत्य है कि आध्यात्मिक-जीवन की तत्परता में आज काफी शिथिलता आ गई है। धर्म के नाम पर लोग अपना स्वार्थ पूरा कर रहे हैं। साधना के नाम पर कामना का प्रचार हो रहा है। तथापि आज ऐसी आदर्श संस्थाएं हैं, जो अपने लक्ष्य में सचाई के साथ देश की धर्म-शक्ति को केन्द्रित कर रही है, उसमें श्री जैन श्वेताम्बर तेरापन्थी सम्प्रदाय भारत की एक आदर्श संस्था है।

इस संस्था का सङ्गठन विशुद्ध आध्यात्मिक-तत्वों को लेकर हुआ है। जैन-दर्शन के अन्तिम तीर्थङ्कर भगवान् महावीर के मूल सूत्रों को लेकर सर्व साधारण में अहिंसा प्रधान भावों का प्रसार करना संस्था का मुख्य लक्ष्य है। आध्यात्मिक दृष्टि से शुद्ध

चरित्र-पालन तो संस्था का आदर्श है ही, पर अहिंसात्मक-सङ्गठन और विधान की दृष्टि से भी यह भारत की एक अनुकरणीय आदर्श संस्था है। जो आज से करीब १७५ वर्षों से एक नेतृत्व, एक साधना और एक कार्यक्रम को लेकर आत्मोत्थान का प्रकाश प्रदत्त कर रही है। निसन्देह यह भारत के लिये गौरव की चीज है। मैंने आज तक जो कुछ देखा और अन्तर से देखा, उसी का एक स्वरूप पाठकों के समक्ष रख रहा हूं। यह कोई संस्था का विधान या उपविधान नहीं है, वरन् उसका एक चित्र है— जो मैं संक्षेप में दे रहा हूं। इसके द्वारा मेरा अनुरोध है कि जनता और जनता के नेतृगण संस्था और इसकी सचाई को निकट से देखें, तभी मेरे लिखने पर विश्वास किया जा सकता है और एक आदर्श अहिंसात्मक प्रयोग का अनुभव और दर्शन मिल सकता है। अखबारों और आजके वैज्ञानिक साधनों के युग में राजनैतिक व सामाजिक संस्थाओं का प्रचार तो शीघ्र होजाता है। पर ऐसी संस्थाएं जो इन सब प्रयोगों को उपयोग में नहीं लाती और न महत्व देती है। सामयिक निरवद्य उपदेशों में भी अपनी पद्धति के अनुसार पर्याप्त सीमित रहती है। केवल आत्म साधना ही जिसका मुख्य उद्देश्य है। उसके लिये एक विद्यार्थी के नाते हमारा भी तो कुछ कर्त्तव्य हो जाता है। मेरा अटल विश्वास है कि यदि पाठकों ने साधु संस्था के जीवन और उसकी श्रेष्ठता को निकट से देखा तो, एक वास्तविक सुख का आभास मिलेगा।

आदर्श-साहित्य-संघ
२६ जनवरी १९४८

—देवेन्द्रकुमार

विषय—सूची

१

क्रान्ति और नव निर्माण

१८ वीं सदी का युग था। चारों ओर राजनैतिक सामाजिक और आध्यात्मिक विचारों की शृङ्खलाएं प्रायः छिन्न भिन्न हो रही थीं। नैतिक जीवन अस्त-व्यस्त और विचारों की मानसिक परतन्त्रता थी। सार्वजनिक एकता और विकास की जगह पारस्परिक वैमनस्य, फूट और शिथिलता का दौरदौरा था। ठीक ऐसे ही समय राजनैतिक भारत की नाजुक नब्ज को पहचान विदेशी प्रवेश कर रहे थे। सार्वजनिक और सामाजिक उच्छृङ्खलता के कारण भारत का अध्यात्मवाद भी अपनी करवटें ले रहा था। जैन

अध्यात्मवादी साधु संस्थाओं में दिन प्रतिदिन दृढता के बजाय आचार-शिथिलता, सिद्धांत विपरीतता, एवं गतिहीनता का आविर्भाव था। फूट का जहर इसमें भी पड चुका था। अस्तु सिद्धांत-रक्षा और आत्म-साधना से दूर, एक सामूहिक उत्तरदायित्व से परे, अपनी अपनी महत्वाकांक्षाओं के दल बन रहे थे। ठीक ऐसे समय मेवाड की संघर्षशील कन्दरा और ऐतिहासिक राणा राजसिंह के राजनगर से—"अपने प्रवाह को बदलो।" की तत्कालीन आवाज को लेकर एक जन-व्यापी क्रान्ति हुई। यहांतक कि वहां के एक बडे जन-समूह ने वन्दना, दर्शन तथा आने जाने का सम्पर्क भी बन्द कर दिया और सच्चे जैन-सिद्धान्तों को लेकर साधु समाज से पूर्ण लोहा लिया! आन्दोलन को दबाने के लिए कई प्रयत्न किये गये और अन्त में स्था० सम्प्रदाय के तत्कालीन आचार्य श्रीरघुनाथजी ने स्थिति की जटिलता का अनुभव कर अपने विद्वान संत श्री भिक्षु स्वामी को ज्ञानार्थ राजनगर भेजा। पहले तो इन्होंने भी अपने व्यक्तित्व के प्रभाव से बागी जनता को बदलने की कोशिश की। लेकिन उसी दिन अनायास भीषण काल संकट में पड कर जनता की सचाई का अनुभव किया और अपना गलत मार्ग बदल देने की प्रतिज्ञा की। चतुर्मास समाप्त होते ही अपनी सम्प्रदाय के सन्मुख अपने सच्चे अनुभवों की रिपोर्ट पेश की। लेकिन काफी लम्बे समय तक भी कोई असर नहीं पडते देख अन्तिम रूप से अनुनय विनय के बाद वह सम्प्रदाय से पृथक हो गये और अपने गत जीवन को बदल एक नये संघर्ष की ओर प्रयाण किया। उसी में एक विशुद्ध आध्यात्मिक संगठन का सूत्रपात और निर्माण हुआ।

२

एक आदर्श साधुता

स्वा० सम्प्रदाय से पृथक होते ही श्री भिक्षु स्वामी ने एक आदर्श साधुता का संगठन प्रारम्भ किया। जैन अध्यात्म के अनुकूल साधुता का सत्य सत्य पालन उनका ध्येय, अहिंसा उनकी सहचरी, त्याग उनकी साधना, वीरता उनका उद्बोधन और संघर्ष उनका जीवन मन्त्र था और इसी उत्साह के नव-मंत्र को लेकर भिक्षु-स्वामी ने सच्चे जैन-सिद्धान्तों का प्रचार किया और उनको प्रयोग में लाकर एक ऐसी सुदृढ आध्यात्मिक संस्था को जन्म दिया, जो अपने आदर्श साधुत्व को लेकर न सिर्फ भारत वरन अखिल विश्व में एक दार्शनिक महत्व रखती और जो आज पौने दो सौ वर्ष की अपनी चिरवस्त परम्परा को लेकर त्याग प्रधान साधुत्व के निर्माण, प्रसार और संगठन में अपनी मजबूत शिलाओं को लिये हुए है। जो अपने विकास की दृष्टि से नव भारत की नव देन और जैन अध्यात्म का प्रगतिशील संगठन है।

भारत की एक आदर्श संस्था

३

तेरापन्थ क्यों ?

संगठन का सूत्रपात एक जगह तेरह साधु और तेरह श्रावकों (गृहस्थों) की उपस्थिति में हुआ। इसलिये लोक दृष्टि से "तेरापन्थ" नाम का विस्तार हुआ।

संगठन की प्रथम बुनियाद में अपने जीवन को मुक्ति संग्राम में समर्पित करते हुए सन्तों ने प्रार्थना की कि:—प्रभो ! यह विशुद्ध अध्यात्मिक पथ तेरा है और हम तेरे अनुयायी हैं। इसलिये हम अपने जीवन को 'तेरापन्थ' के आदर्श में अर्पित करते है ! यह 'तेरापन्थ' के सैनिकों का एक सुन्दर आत्मिक आह्वान है।

संगठन को नींव—अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, अस्तेय और अपरिग्रह के पंच महाव्रत, पांच समिति और तीन गुप्ति के अरसाधाण तेरह नियमों की विशाल शिलाओं से गठित हुई है। इसलिये जैन को दृष्टि से 'तेरापंथ' का अपना एक आदर्श है।

भारत की एक आदर्श संस्था

४

इतिहास की ओर

संस्था का इतिहास-प्रारम्भ ही संघर्ष में हुआ है। और संघर्ष से ही संस्था का जीवन–निर्माण हुआ है। अब तक संस्था का निर्माण हुए पौने दोसौ वर्ष हुए हैं ओर यह सब वर्ष नित्य नये अपवादों को लेकर निकले हैं। राजनैतिक और सामाजिक संघर्ष में जो कठिनाइयां हैं उससे कई अधिक कठिनाइयां धार्मिक संग्राम में हैं। राजनैतिक और सामाजिक संस्थाओं को अपना प्रसार और विकास करने के लिए आजकल के कई वैज्ञानिक और प्रेस साधन तो हैं, लेकिन पूर्ण आध्यात्मिक जीवन का पालन करनेवाली जैन संस्थाओं के लिए तो इसका प्रयोग सर्वथा असान्य है। ऐसी दशा में जहां एक नया संगठन, और फिर विरोध करने वालों की संख्या कम नथी। धर्म और आत्म साधना को सामाजिक-कर्तव्य के नाम पर छीटे उछालनेवाले भी कम न थे। संस्था का विकास और प्रगति देख, द्वेष फैलानेवाले भी कम न

थे और उन सबके पास प्रचार के साधन थे और आज भी नित्य नये नये छापों और पेम्पलेटों के द्वारा वे बराबर अपना असत्य प्रचार करते रहे हैं। इसी संघर्ष में तो संप्रदाय गुजर रहा है। लेकिन संस्था और उनके कर्णधारों का लक्ष्य सदा से उदार और क्षमाशील रहा है और यही कारण है कि संस्था की ओर से कभी किसी के द्वारा ऐसे कठोर और असह्य आरोपों पर भी प्रकाशन द्वारा उत्तर नहीं दिया गया, वरन् समय समय पर संस्था के आचार्यों ने विरोधी-प्रचार को उनको सेवा और उपकार के रूप में माना है। आज भी वर्तमान आचार्य श्री तुलसी गणी का आह्वान है कि "विरोधी प्रचार करने वाले हमारे लिए तो एक बडा उपकार कर रहे हैं, जिसके कारण कम से कम सम्प्रदाय के नाम का तो प्रचार हो रहा है। ओर इसी प्रसङ्ग वश बहुत से लो1 सम्प्रदाय के सम्पर्क में तो आते हैं"। यही दृष्टी सभी भूतपूर्व आचार्यों की रही है। यहो कारण है कि पत्रों में अत्यन्त बुरे शब्दों में विस्फोटक फोडने पर भी और उत्तेजना दिलाने पर भी उत्तेजित नहीं हुए। इससे विरोधी स्वयं झुके, शरमिन्दा हुए और अपनी भूलें स्वीकार को। यह सम्प्रदाय की विशुद्ध अहिंसात्मक एवं शान्त नीति है।

इसके अतिरिक्त इतिहास में ऐसे उदाहरण भी मिलते हैं जबकि साधुओं को प्रान्त निषेध की राज्याज्ञा मिलने पर भी उन्होंने किञ्चित मात्र भी अपमान महसूस नहीं किया; वरन् सद्भावना व्यक्त की। जिसका फल यह हुआ कि प्र.यश्चित भरे शब्दों में राज्य ने भारत की एक आदर्श संस्था

अपनी निषेध-आज्ञा वापस ले ली और राज्यमें साधुओं का संम्मान भी बढा। इसी तरह प्रचार के लिए विचरित साधुओं को कितने ही वैयक्तिक—संघर्षों में गुजरना पडा और उसका विशुद्ध अहिंसात्मक पद्धति से उत्तर दिया। आज भी सम्प्रदाय की यही नीति है, जिस से सम्प्रदाय दिन प्रतिदिन विकसित हो रहा है।

इसी संघर्ष के साथ साथ सम्प्रदाय का ध्यान रचनात्मक निर्माण की ओर लगातार रहा है। यही कारण है कि आज संस्था का संगठन इतना ठोस और व्यापक है, जो विश्व के लिए एक नमूना है। इन पौने दो सौ वर्ष में संस्था के गणप्रतिष्ठित ९ आचार्य हुए हैं जो एक से एक अपनी शानी रखते हैं। जिन्होंने संस्था का सुयोग्य,नेतृत्व ही नहीं किया वरन् अपने समय का सुन्दर मार्ग-दर्शन भी किया है। प्रथमाचार्य के वाद चतुर्थ आचार्य श्री जयाचार्य ने तो सम्प्रदाय का ठोस विधिवत निर्माण किया है। सम्प्रदाय के संगठन में जिन जिन मर्यादाओं को इतने वैज्ञानिक रूप से गठित किया, उसको लेकर हम कह सकते हैं कि वे अपनी कोटि के एक सफल विधानवेता थे। जिनके विधान ने संस्था का एक नया मार्ग दर्शन किया और जिसकी श्रृङ्खलाओं से सम्प्रदाय का कण-कण गूंथा हुआ अंग रूप में सुशोभित है।

कला साहित्य और ज्ञान की वृद्धि में इन पौने दो सौ वर्षोंमें संस्था ने काफी तरक्की की है जिसका विवेचन पृथक् प्रकरण मे किया गया है। अष्टमाचार्य श्री कालूगणी अपने समय के एक विद्वान दार्शनिक हो चुके हैं और आज नवमाचार्य श्री तुलसीगणी नव-युग के नव निर्माता की भान्ति संस्था का ऐतिहासिक मार्ग-दर्शन कर रहे है जो एक विश्व-विचारक के रुप में वन्दनीय और आदरणीय हैं।

५

तेरापन्थ का आदर्श

जैन तत्वानुकूल भगवान महावीर के आदर्श को लेकर आत्म. शोधन और आत्म-विकास के चरम लक्ष्य तक पहुंचना ही तेरापन्थ का मुख्य आदर्श है।

संस्था की प्रबल मान्यता है कि आत्म.विकास का मार्ग संसार को निस्सार समझ, शरीर को नहीं वरन् आत्मा को सुन्दर स्वस्थ और ज्ञानवान बनाने से है। जिसके लिये भौतिक साधन तुच्छ हैं। धर्म ही एक मात्र प्रकाश है।

अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, अस्तेय और अपरिग्रह साधुत्व के अमूल्य श्रृङ्गार, पांचसमिति-सावधानता और तीन गुप्ति युक्त संरक्षण तेरापंथ का नागरिक स्वरूप है और जो इसका संगठित अनुशासन में अनुकरण करता है वही इस संस्था का एक असाधारण सदस्य अर्थात् साधु है।

'तेरापंथ'—संसार और धर्म इस दोनों को पृथक मानता है। संस्था की मान्यता है कि संसारिक कर्त्तव्यों का धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं है। धर्म तो विशुद्ध आत्म—साधना और चरित्र गठन में है।

सैद्धान्तिक मत है कि धर्मयुक्त मानव संसारी जीवों से अधिक श्रेष्ठ और चरित्रवान है, क्योंकि वह विकार रहित है।

प्राणी मात्र के प्रति मैत्री भाव रखना, किसी के प्रति राग और द्वेष नहीं करना और मानवता को लेकर समाज की सेवा करेना संस्था का आवश्यक कर्त्तव्य है।

हिंसा से विमुख करना और अहिंसा के प्रति दृष्टिकोण पैदा करना, तेरापंथ का अजर अमर सिद्धान्त है।

असत् प्रवृत्तियों से सत् प्रवृत्तियों की ओर, और मानवीय दुराचार और अत्याचारों से मानव-समाज को ज्ञान द्वारा सचेत करना संस्था का अपना एक दृष्टिकोण है।

अहिंसा आदि साधनों के द्वारा पूर्ण आत्म-विकास करना, मोक्ष को प्राप्त करना, आत्मा को विजयी करना, आचार्य के अनुशासन में इस लक्ष्य तक पहुंचने का प्रयत्न करते रहना, आत्म-कल्याण के साथ साथ परोपकार करते रहना और उपदेश के द्वारा धर्म-प्रचार करना संस्था का सर्व व्यापी लक्ष्य है।

अपनी समस्त सेवाओं को आचार्य एव संस्था के सिपुर्द कर देना, आचार्य की आज्ञा एवं संस्था की सामूहिक व व्यक्तिगत मर्यादाओं का सावधानी एवं तत्परता से पालन करना, आत्म—निरीक्षण करना और अपनी प्रवृत्तियों को नियंत्रित करना तेरापंथ के सैनिकों का सामूहिक आत्मानुशासन है।

इस प्रकार तेरापंथ—धर्म से ही सबको जागृत करता है और इसी में मानव का कल्याण व उत्थान समझता है जिसका आदर्श स्वयं साधु का चरित्र है।

६

मन्तव्य

अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, अस्तेय और अपरिग्रह—ये साधुत्व के अङ्ग सुरक्षित महाव्रत हैं।

वही दान धर्म का अंग है जो त्यागी पुरुष (अर्थात्-उपरोक्त महाव्रतों का पालन करने वाले) को दिया जाय।

धर्म-दया वही है, जिस में किसी प्रकार की भी हिंसा नहीं है और रागद्वेष की प्रवृत्ति नहीं है।

लोकदान और लोकदया सामाजिक कार्य है।

धर्म अमोल है। धर्म—उपदेश से कराया जाता है, जबरदस्ती से नहीं।

धर्म आत्म-साधना में है, भौतिक-संरक्षण में नहीं।

धर्म आत्म—तृप्ति में है, भौतिकसन्तुष्टि में नहीं।

जैनी गृहस्थ सांसारिक कामों को नैतिक-प्रतिष्ठा मान कर करते हैं, धर्म समझ कर नहीं।

आध्यात्मिक-सहायता पहुंचाना धर्म-सेवा है और भौतिक-सहायता करना लोक सेवा है।

७

संगठन

संस्था का संगठन मुख्य दो भागों में शृङ्खलित है। प्रथम भाग पुरुष साधु समाज का है। जिसका सम्पर्क आचार्य महोदय से है। और दूसरा भाग महिला-साध्वी समाज का है. जिसका प्रत्यक्ष नेतृत्व तो आचार्य करते हैं। लेकिन दोनों के एक साथ निवास का शास्त्रीय-निषेध होने के कारण महिला-ब्रिगेडका अपना अलग दायित्व है और वह संगठन अर्थात् आचार्य के प्रति जिम्मेदार है। वर्तमान महिला-ब्रिगेड की नेत्री महासती श्री लाडाजी हैं। नेत्री का निर्वाचन योग्यता, शीलता और कार्य-कुशलता का दृष्टि-कोण, रखकर आचार्य ही करते हैं। संगठन के प्रथम ब्रिगेड में १८९ साधु और दूसरी में ४५२ साध्वियां वर्तमान हैं।

६४१ अहिंसक सैनिकों को एक विशाल जमात होते हुए भी आचार्य के एक नेतृत्व में एक उद्देश्य और एक कार्यक्रम का सब विधिवत् पालन करत हैं और अपने संगठन के प्रति जिम्मेदार रहते हैं।

प्रायः हम देखते हैं कि एक कुटुम्ब में जहां दो स्त्रियों का समावेश हो जाता है, वहां बहुत दिनों तक एक दूसरे का एक साथ टिकना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य हो जाता है और रात दिन के झगडों से कुटुम्ब का जीवन एक अशान्त वातावरण और क्लेश का रूप ले लेता है। वहां ४५२ अहिंसक स्त्रियों का एक विशाल कुटुम्ब होते हुए भी कभी परस्पर ईर्ष्या, द्वेष और लडाई का काम नहीं, वरन् सदैव शान्त वातावरण रहता है। सब एक साथ एक नेतृत्व में अपने कर्त्तव्य का पालन करती और सत्प्रवृतियों में लीन रहती हैं। महिला समाज में अहिंसा के प्रति वृहद रूप से इतना सामूहिक और सुन्दर उदाहरण भारत में तो क्या विश्वमें भी सम्भवतः कठिनता से मिलेगा। अहिंसात्मक—जीवन और साधना का यह एक जाज्वल्यमान चित्र है।

इन पौने दो सौ वर्ष के कुछ अधिक काल में कुल १८१० सैनिक दीक्षित हुए हैं जिनमें १८६ के लगभग अपनी शारीरिक और मानसिक असमर्थता के कारण गण से बाहर हुए हैं। १६२४ साधुओं का एक सूत्र में एक साधना का पालन करना; क्या कम महत्वपूर्ण है ?

भारत की एक आदर्श संस्था

संगठन में एक बडी सुन्दरता यह है कि योग्य और बडों के प्रति सम्मान तथा छोटों के प्रति बडों का विशुद्ध स्नेह है जिससे कठोरता कभी अनुभव नहीं होती।

संस्था के सभी सदस्य सामूहिक व व्यक्तिगत रूप से अपने नियमों का पालन करते हैं। सबके प्रति सद्भावना रखते हुए कोई किसी की बुराई, निन्दा या व्यक्तिगत वैमनस्य की बात नहीं करते। ऐसा मालुम होने पर अनुशासन का विधान लागू होता है। हां, यदि किसी की कोई बुरी प्रवृति दृष्टि में आवे तो वह सर्व प्रथम सचेत कर देते हैं। इतने पर भी सन्देह बने रहने पर वह अपने अध्यक्ष अर्थात् आचार्य को रिपोर्ट देते है। तब अध्यक्ष का काम है कि-वह तत्काल कार्र-वाइ प्रारम्भ करें।

संगठन की खास विशेषता यह है कि एक विशुद्ध अहिंसक नागरिक की तरह सब अपना दायित्व निभाते हैं और उससे किसी को विमुख होते देख पूर्ण अहिंसात्मक पद्धति से ही प्रतिकार के नियम स्वीकार करते हैं।

इस प्रकार अहिंसा का एक सुन्दर विधान, व सुसंस्कृत संगठन, भारत के लिये एक नई देन है। जिसमें प्रजातन्त्र का एक आदर्श और समाजवाद का आकर्षण इसमें मिलता है और मिलता है जीवन का वास्तविक संरक्षण।

८

आचार्य

संगठन का महत्वपूर्ण केन्द्र आचार्य है और आचार्य ही संस्था के एक आदर्श मार्गदर्शक हैं, नेता हैं, सूत्रधार हैं और संस्था की सारी बागडोर उन्हीं के कुशल नेतृत्व में रहती है। आचार्य अपने कार्य में अत्यन्त तत्पर और जिम्मेदार होते हैं। संसार का विगत जीवन भी उनके समक्ष होता है और भविष्य भी। जिस के आधार पर वह संस्था की प्रगति में अत्यन्त कुशलता के साथ संचालन का दायित्व निभाते हैं। ऐसे तो

सभी संस्थाओं में बाधाएं मौजूद-रहती हैं लेकिन जो विशुद्ध अहिंसात्मक संस्थाएं हैं उनके सामने तो बाधाओं का जाल क्षण क्षण में बिछा रहता है। बाहर से भी और अन्तर से भी। उदाहरण के लिये रात्री आहार और पानी का त्याग संस्था के सैनिकों का एक असाधारण नियम है। ऐसी दशा में रात्रि में किसी सदस्य के अनायास बीमार हो जाने पर औषधि-प्रयोग का एक दम विषेध है। उस समय की दढता को कायम रखना और अनन्य सेवा द्वारा उसकी कुशल परिचर्या करना महान और आन्तरिक उत्तर-दायित्व है जिसके लिये आचार्य श्री को प्रतिक्षण सचेत रहना पडता है। धार्मिक दृष्टिकोण को लेकर कितने ही आलोचक, समालोचक, दर्शक, जिज्ञासु और कई विरोधी भावना को लेकर भी प्रस्तुत होते हैं; उनका समाधान भी करना होता है। संस्था का आन्तरिक और बाहरी सभी ओर से दिग्दर्शन आवश्यक होता है। नियम, उसकी श्रेष्ठता और कर्तव्याकर्तव्य को ध्यान में रख-कर उसकी रक्षा का, परम्परागत विधान को निभाने का, समया-नुकूल संशोधन करने का, साधुओं की शिक्षा दीक्षा और ट्रेनिंग का, आध्यात्मिक दृष्टि से समाज की पुनर्रचना का, साहित्य कला और संस्कृति के विकास का एवं जगह जगह धार्मिक प्रचार और संगठन का असाधारण और सभी महत्वपूर्ण दायित्व आचार्य के सुडौल कंधों पर रहता है इसलिये इन सबके सञ्चालन के

लिये आचार्य की प्रतिभा अत्यन्त तीक्ष्ण, विकसित एवं विश्वसनीय होती है। वह अपनी प्रतिष्ठा के अत्यन्त जिम्मेदार, चतुर, विद्वान और विवेकशील होते हैं। विद्वत्ता के साथ ही आचार्य पद को प्राप्त करने वाले असाधारण हृदय, स्वाभाविक सौजन्य और आन्तरिक सौन्दर्य को लिये हुए होते हैं, क्योंकि उनकी प्रतिष्ठा संगठन की, शासन की अर्थात् संस्था की प्रतिष्ठा है।

संस्था के आचार्य—पद का निर्वाचन पूर्व सुशोभित आचार्य ही करते हैं, क्योंकि वह अपना दायित्व समझते हैं और योग्य नेतृत्व के हाथों में ही अपना असाधारण दायित्व सौंपते हैं, जिसको वह सर्वश्रेष्ठ समझते हैं। पद सौंपते समय किसी के प्रति राग या छोभ आवेश नहीं होता वरन् आचार्य की श्रेष्ठता का ध्यान रहता है।

अबतक पौने दो सौ वर्ष के काल में संस्था के ९ आचार्य हुए हैं, जो एक से एक उन्नत, श्रेष्ठ और अपने अपने समय के सुयोग्य मार्गदर्शक रहें हैं और उनके विश्वस्त मार्गदर्शन में संस्था ने काफी तरक्की की है। वर्तमान आचार्यपद पर युवक हृदय श्री तुलसीगणी सुशोभित है जो अपनी प्रतिभा और ज्ञान के एक श्रेष्ठ आचार्य तो हैं हीं, पर वर्तमान समय के एक कुशल नेता भी हैं, जिनके विश्वस्त नेतृत्व में संस्था दिन प्रति दिन आगे बढ रही है, नई दुनियां की भी आप पर आंखें हैं।

१

कार्य–सञ्चालन

६४१ सैनिकों की इतनी बडी अहिंसक जमात होते हुए भी संस्था की गति विधि का सम्पूर्ण सञ्चालन आचार्य महोदय करते और वही संस्था के उद्देश्य के प्रति पूर्ण उत्तरदायी रहते है। यद्यपि धार्मिक मतानुकूल आचार्य के बाद (१) उपाध्याय (२) गणी आदि ६ महत्वपूर्ण पद हैं। जो आचार्य की सुविधा के लिये रहते है और आचार्य चाहे तो उन पदों का विभाजन कर सकते है। लेकिन वर्तमान में इन सब का उत्तरदायित्व आचार्य ही महसूस करते है। इस नाते व्यवस्था, प्रचार, शिक्षा, दीक्षा आदि की सम्पूर्ण और सीधी कार्यवाही यहीं से होती है और आचार्य ही इसको बडी योग्यता पूर्वक निभाते है। संस्था की

मुख्य प्रवृतियों को हम निम्न चार भागों में विभक्त कर सकते हैं, जो प्रायः व्यवस्थित और आचार्य द्वारा नियंत्रित हैं और उसके विकास का असाधारण श्रेय आचार्य को प्राप्त है।

शासन—कार्य

यह प्रवृति विशेषतया आचार्य से सम्बन्धित है और आचार्य द्वारा ही इसका सम्पादन होता है प्रचार के लिये साधु साध्वियों को निर्देश करना, आदेश देना (३) चतुर्मास नियत करना (४) संस्था की गति विधिका सञ्चालन करना और (५) शासन सम्बन्धी जितने महत्वपूर्ण कार्य और आदेश निकलते हैं वह सब आचार्य द्वारा सम्पन्न होते हैं। जहां और जिस स्थान में आप विचरते हैं, वही आपका शासन–केन्द्र हो जाता है। वर्षाऋतु के चार मास आपके शासन–कार्य की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण होते हैं और वह चतुर्मास जिसे प्राप्त होता है वह नगर जनोपयोगी मुक्तिप्रद ज्ञान और त्याग मय उपासनाका एक वृहद आकर्षण होजाता है। आचार्य के साथ शासन संचालन के लिये संतोंका एक नियत दल और महिला ब्रिगेड का एक मुख्य दल रहता है और वह सब आचार्य को गति-विधि तथा उनके सम्मान में सहायक होता है।

दैनिक व्याख्यान, चर्चा, उपदेश, सेवा, त्याग और उपासना

के अतिरिक्त दिन को संस्था का मुख्य कार्य संचालन होता है और यही इस प्रवृत्ति की विशेषता है।

प्रचार–कार्य

यह कार्य जन-कल्याण और धर्म-प्रसार की दृष्टी से अत्यन्त असाधारण और शासन का महत्वपूर्ण अंग है। मर्यादा महोत्सव अर्थात् संस्था के वार्षिकोत्सव में आचार्य सबको अलग अलग प्रचार का निर्देश करते हैं।

प्रचार कार्य के लिये कुल ११४ के लगभग सैनिक-दल नियत है। जिसमें महिला ब्रिगेड के ६८ और साधु समाज के ४६ के लगभग नियुक्त सिंघाडे हैं। एक एक दल में ५ और ३ से कम नहीं हैं। किसी किसी दल की संख्या ७ भी है। लेकिन साधारण तया महिला-ब्रिगेड के दलों में ४ से किसी दल की संख्या कम नहीं है। प्रत्येक दल में अपने अपने नेता हैं। जिसके संरक्षण में दल को काम करना पडता है। प्रत्येक को स्थान या देश विशेष का आदेश प्राप्त होने के साथ उनके चतुर्मास व रास्ते का कार्यक्रम भी आचार्य के द्वारा निर्धारित होता है और उसी के अनुकूल दल अपना कार्य करता है। किसी परिस्थिति विशेष में आचार्य के आदेश को ध्यान में रखते हुए दलपति को कार्य की स्वतन्त्रता रहती है। इस प्रकार यह दल जन समाज के कल्याण सम्पादन व धर्म प्रचार

में अत्यन्त तत्पर और वफादार रहते हैं। जो संस्था की सब से बडी सेवा कर रहे हैं।

इतने व्यवस्थित प्रचार के कारण ही इन पौने दोसौ वर्षों में निस्वार्थ धार्मिक संस्था के ५ लाख के लगभग मानने वाले हैं। पञ्जाब में जहां इने गिने श्रावक थे, वहां इन दस वर्षों में हजारों श्रावक हो गये हैं और संस्था का प्रचार कार्य पूर्ण रफ्तार से जारी है। बम्बई, दिल्ली, अहमदाबाद, सूरत आदि भारत के सभी बडे बडे शहरों मे संस्था का प्रचार है। राजपूताना तों 'तेरापन्थी शासन का एक मुख्य केन्द्र है। प्रचार की रीपोर्ट को देखने से पता लगता है कि अबतक निम्न देशों में एक प्रमाणित संख्या के आधार पर लगभग चतुर्मास होते रहे हैं। मेवाड में—२४ मारवाड में—२४ बीकानेर में—३० मालवा में—३ पञ्जाब में—१९ महाराष्ट्र में—३ दिल्ली मे—१ मेरवाडा में—१ हरियाणा में—६ खान देश में—१ कच्छ में—१ और जयपुर में ६ हैं। और यह सब धर्म प्रचार के मुख्य अंग बन रहे हैं।

प्रचार का एक मात्र उद्देश्य है:—जनता में आध्यात्मिकता तथा ज्ञान की वृद्धि करना। अहिंसा द्वारा उनके अस्त व्यस्त और अशान्त लोक-जीवन को उन्नत बनाना और शुद्ध धार्मिक वातावरण जाग्रत कर लोक जीवन में आत्म-बल तथा त्याग-भाव का संचार करना है। जो विश्व के कल्याण में अत्यन्त उपयोगी है।

भारत की एक आदर्श संस्था

साहित्य और कला

[निर्माण—कार्य]

साहित्य संतों का मुख्य कम है जिसको वह अपनी सुन्दर और प्रेस के मानिन्द लिपि से सुसंस्कृत रखते है । जहां प्राचीन साहित्य शोधन और उसके संरक्षण की ओर संतों का ध्यान है । वहां अपनी स्वतंत्र रचना और उसके विकास की ओर भी संस्था का आकर्षण है । भूतपूर्व आचार्यों ने अपने आदर्श साहित्य की एक महान देन दी है । जिसमें श्रीमद् भिक्षु स्वामी और जयाचार्य का नाम विशेष उल्लेखनीय है और जिनका आत्म—ज्ञान से

ओत प्रोत साहित्य आज भी संस्था के लिये एक अमूल्य निधि हैं। संस्कृत, प्राकृत और हिन्दी हिन्दुस्तानी में काफी साहित्य उपलब्ध होने के साथ राजस्थानी साहित्य के तो कई बहुमूल्य संग्रह हैं। वर्तमान आचार्य ने भी राजस्थानी व संस्कृत में जो साहित्य प्रस्तुत किया है वह साहित्य-संसार के लिये एक गौरव की देन है। लेकिन खेद है कि इतने विशाल साहित्य को प्रकाश में लाने का किसी ने प्रयास नहीं किया। साधु तो स्वयं प्रेस-सासनों और आज के वैज्ञानिक-प्रयोगों से सर्वथा पृथक होने के कारण ला सकते नहीं। लेकिन राजस्थानी, मार-वाडी और अन्य साहित्य के जिज्ञासु कुछ विधिवत् बातों को ध्यान में रखकर चाहे तो इसका उपयोग ले सकते हैं। वर्तमान आचार्य द्वारा प्रदत्त 'अशान्त—विश्व को शान्ति का संदेश' 'आदर्श—स्वराज्य' और 'धर्म-संदेश' आदि हिन्दी का संक्षिप्त और सामयिक साहित्य तो प्रकाश में भी आया है और जिसकी कई भारतीय विद्वानों ने प्रशंसा की है। 'अशान्त-विश्व को शांति का संदेश' पर तो राष्ट्रपिता स्वयं महात्मा गांधी ने ध्यानपूर्वक मनन करते हुए टिप्पणी की है कि "ऐसे संदेश को निकालने में विलम्ब क्यों? और आगे जाकर लिखा है "क्या ही सुन्दर होता यदि दुनिया इस महान पुरुष के इन नियमों को मानकर

चलती।" लेकिन ऐसे कई बहुमूल्य संग्रह है, जिसके लिय प्रयत्न किया जाय तो भारतीय-साहित्य और प्रमुख राजस्थानी-साहित्य के रङ्ग मञ्च में एक नई देन होगी। वर्त्तमान् आचार्य के नेतृत्व में ऐसे कई प्रतिभा प्रधान कवि और साहित्यकार हैं— जिनकी रचाएं हिन्दी संसार के लिये श्रेष्ठ साबित होगी और, उनका सङ्कलन आवश्यक है।

साहित्य-रचना ही संस्था का ध्येय नहीं, वरन उसका सुन्दर निर्माण भी संत सहित्यिको की मुख्य प्रवृति है। जो एक कला है और यह कला संस्था के अंग अंग में विस्तृत है। क्या सैनिक और क्या सैनिकाएं प्रायः सब के सब अपनी लेखन-कला में एक से एक शानी रखते हैं। लेखन कला और लिपि-निर्माण में अधिकतर सिद्ध हस्त है। कई संत और सतियों की लिपि तो इतनी विश्वस्त है कि १२ इञ्च के लम्बे और ६ इञ्च के चौडे छोटे से कागज पर ८०,००० अक्षर सुन्दर से सुन्दर और बारीक अक्षरो में सुसंस्कृत हैं। जिसको देखकर बडे बडे भारतीय और युरोपियन विद्वान दांतो तले अंगुली दबाते हैं।

साहित्य के बाद कुछ ऐसी निर्माणकारी कलाएं डाइङ्ग, चित्र, पूठे, पातरी आदि जो साधु समाज के दैनिक व्यवहार में आती हैं, उसका निर्माण स्वयं हाथों से ही करते हैं। चित्र कला लेखन कला और साहित्य—कलां में जहां सभी संत

सतियों की प्रवृति है: पातरे—पातरी की सफाई, रंगाई और निर्माण कार्य में महिला सैनिकाएं अधिक हस्तकुशल हैं और वह अपने स्वावल्वी उद्योगों में सिद्ध हस्त भी हैं। यह सब स्वतंत्र समाज के स्वंतत्र उद्योग हैं। जिसके लिये वह किसी वैज्ञानिक-साधनों पर निर्भर नहीं, वरन् स्वावलम्बी और स्वयं अहिंसा के क्षेत्र तक वैज्ञानिक हैं। जिसको देखकर मेरा अटूट विश्वास है कि आने वाला नया समाज आदर ही करेगा और उनकी संस्कृति से अपना तथा नये समाज के निर्माण की शिक्षा लेगा।

लेकिन एक बात आत्यधिक महत्वपूर्ण है कि निर्माण जहां संस्था का ध्येय है वहां उसको वह उपयुक्त मात्रा में हो करते हैं जिससे संस्था के क्रम विकास में बाधा नहीं हो और उसके प्रति आसिक अर्थात् मोह न रहे। जिससे कि परिग्रह के बढने का भय रहता है। जितना आवस्यक और अनिवार्य है, उतना ही वह लेते और निर्माण करते हैं। क्योंकि इन सबको रखने के लिये साधु जानते हैं कोई घर नहीं, वरन् हमारी झोली है। हम स्वतंत्र संस्था के स्वतंत्र मजदूर हैं। जिसके आत्मनुशान में रहते हुए हमें ही अपने कंधों पर उठाये उठाये जन कल्याणके लिये गांव गांव में विचारना हैं और आत्म स्वतंत्रता को ज्योंति जलाना है। अस्तु वह अपने लक्ष्य में भी सदैव अनुशासित और मर्यादित रहते हैं। जो प्रत्येक संगठन के लिये अनुकरणीय हैं।

भारत की एक आदर्श संस्था

शिक्षा और विकास

[आत्म निर्माण]

नवदीक्षित संतों और युवा संतों की शिक्षा, उनके रहन सहन और व्यक्तित्व को परिपक्व बनाने के लिये आचार्य के निरिक्षण में शिक्षण कार्यक्रम भी संस्था का एक विशेष अंग है और इस दशा में संस्था ने काफी तरक्की की है। प्राकृत संस्कृत और हिन्दी-हिन्दुस्तानी में न सिर्फ उन्हें ज्ञान ही कराया जाता है पर उनके व्यक्तित्व विकास और आत्म—निर्माण की ओर भी विशेष ध्यान दिया जाता है। शिक्षा का मुख्य लक्ष्य चरित्र-निर्माण के साथ मानसिक—विकास है और इसी का सुप्रयास है कि लेखन साहित्य और संस्कृत में जहां संत और सतियों की विशेष प्रगतिशीलता मिलती हैं वहां कई विद्वान दार्शनिकों और साहित्यकारों के साथ उनके सुगठित आत्म-निर्माण का भी सुदृढ परिचय मिलता है। शिक्षा और विकास के लिये संस्था का सुन्दर नियमों से सुव्यवस्थित स्वतंत्र वायुमण्डल (वातवरण) ही इस तरह का है, जो न सिर्फ सैनिक सैनिकाओं की ज्ञान की कसौटी में कसता हैं, वरन् उनके आत्म—निर्माण में भी प्रभावशाली और उत्तरदायी होता है। इससे उत्तीर्ण होने पर उन्हें अपने ज्ञान और वाणीका अनुशासन में रेहते हुए स्वतंत्र विकास करने का भी पूर्ण अवसर मिल जाता है। जिसका उपयोग वह प्रचार कार्य में ज्ञान की अलख जगा करते हैं।

दीक्षा (प्रवेश-नियम)

१. आत्म-त्याग की उत्कट जिज्ञासा रखनेवाले, जिनको संसार त्याग की भावना और विशुद्ध आध्यात्मिक जीवन की प्रबल उत्कंठा हो, वह, दीक्षा के लिये अपने माता, पिता, संरक्षक या अभिभावको

की स्वीकृति और गांव के मुख्य प्रतिष्ठित नागरिकों की साक्षी के साथ अपना प्रवेशपत्र दे सकते हैं।

दीक्षा के नियमानुकूल सभी प्रमाण उपलब्ध हो जाने पर भी जब तक आचार्य महोदय आगुन्तक वैरागी के चारित्र चित्रण की जांच न करलें, तबतक वह किसी प्रकार की कोई आज्ञा नहीं देते है। पूर्ण विश्वास हो जानेपर ही आचार्य दीक्षा की प्रारम्भिक आज्ञा देते हैं। बाज वक्त देखा जाता है कि इस कार्य में कई महिने और वर्ष निकल जाते हैं। किसी की भी दीक्षा इतनी सरल और सुगमता से नहीं हो पाती।

दीक्षा की प्रारम्भिक आज्ञा में आचार्य महोदय जिज्ञासु को प्रतिक्रमण अर्थात् सैनिक का एक आवश्यक दैनिक काम सीखने की आज्ञा देते हैं। तबतक आचार्य को जिज्ञासु की बुद्धि और जांच के लिये एक और अवसर मिल जाता है। इससे उत्तीर्ण होने पर आचार्य अपनी दूसरी आज्ञा में दीक्षा देने का स्थान और तारीख का निर्देश करते हैं।

निश्चित तारीख को दीक्षा हजारों की विशाल सार्वजनिक सभा में सम्पन्न होती है। पहले दीक्षित होने वालों के अभिभावक अपना आज्ञा-पत्र प्रेषित करते हैं और दीक्षा के लिये आन्तरिक प्रार्थना करते हैं। फिर साक्षी देने वाले अपना समर्थन करते हैं। उसके बाद धार्मिक नियमानुकूल आचार्य द्वारा दीक्षा-समारोह सम्पन्न होता है।

भारत की एक आदर्श संस्था

दीक्षार्थी के लिये बालिग और नाबालिग का कोई प्रतिबन्ध नहीं है। सबको अपने आत्म-विकास का जन्मसिद्ध अधिकार है—बशर्ते कि वह त्याग की इतनी कठोर साधना में अपना जीवन झोंक सके। साधारणतया ९ वर्ष की आयु अनिवार्य हैं, जो शास्त्रों से अनुमोदित है।

दीक्षा में बुद्धि का प्रसंग नहीं, वरन् जिज्ञासु और साधना का महत्व है और वह यदि है—तो उसे अपने धर्म पालन का समुचित अधिकार है। कोई भी शक्ति उसको चिंवञ्चित नहीं कर सकती।

दीक्षा एक महान् सेवाव्रत है, जिसके द्वारा वह अपनी सभी सुखमय महत्वाकांक्षाओं को त्यागकर आत्म और परमार्थ सेवा का एक महान् व्रत अङ्गीकार करता है। जो अभिनन्दनीय हैं।

दीक्षा आचार्य के आदेशानुकूल होती है। साधु साध्वियां किसी को दीक्षा के लिये निर्देश करना तो दूर, आचार्य की आज्ञा के बिना कोई किसी को तैयार भी करे तो वह विपरीत है।

छल, प्रपञ्च, स्वार्थ या संस्था में भरती करने की दृष्टि से जो दीक्षा दी जाती है, वह दीक्षा नहीं एक जाल है और ऐसी दीक्षाएं अधिक टिक भी नहीं सकती। वरन् संस्था की जडों को मूल से उखाड देती है। इसलिये संस्था इस ओर क्षण क्षण में सचेत रहती है

भारत की एक आदर्श संस्था

संस्था के इतिहास में ऐसे उदाहरण भी मिलते हैं, जहां दीक्षा के अभिभावकों की स्वीकृति नहीं मिलने पर ७० दिन के अनशन के बाद दीक्षार्थीनि अपना प्राण छोड देती है पर धर्म-प्रण नहीं छोडती है। पाठक सोच सकते हैं। पाठक सोच सकत हैं कि दीक्षा के लिये संस्था का कितना कठोर आदर्श है।

संस्था के इन कुल १८५ वर्षों के काल में १८१० दीक्षित हुए। जिसमें (जगह भरना है के लगभग बाल-दीक्षित थे। जिसमें अबतक अपनी शारीरिक असमर्थता व अन्यान्य कारणों से १८६ करीब संस्था से बाहर निकले जिसमें बाल-दीक्षितों की संख्या सिर्फ है। इसीसे संस्था के सत्य का वास्तविक तत्व मिलता है।

जो बाल-दीक्षा का निरुद्देश्य विरोध करते हैं। उपरोक्त आंकडों से उनकी आखें खुलना चाहिये।

यही नहीं संस्था के ९ आचार्यों—जो संस्था का इतना वृहद उत्तरदायित्व वहन करते हैं, में से ८ आचार्य बाल दीक्षित ही हुए हैं।

कहा है आज के बालक कल के निर्माता है और यह बात इतिहास से सिद्ध है। अन्तर सिर्फ इतना ही है कि कोई सांसारिक शिक्षा द्वारा राष्ट्र के नागरिक होते हैं और कोई धर्म के अनुशासन में—अपना चरित्र निर्माण करते हैं। तिसपर भी जो विरोध करते हैं वह बालक के स्वतः विकास में बाधक बनते हैं।

११

दीक्षार्थी की प्रतिज्ञा

संस्था में प्रवेश करते समय विशाल जन समूह में दीक्षार्थी मुख्य रूप से निम्नलिखित सैनिक-घोषणा को स्वीकार करते हुए दीक्षित होते हैं। जिससे उनके महान् अग्रगामी कदम तथा अहिंसक भावों को विश्वस्त परिचय मिलता है।

(१) आज से मैं पूर्ण अहिंसा-व्रत को स्वीकार करता हूं, मन, वचन तथा शरीर से आजीवन कभी हिंसा करूंगा नहीं, कराऊंगा नहीं और करते हुए को मैं कदापि अच्छा नहीं समझूंगा।

(२) आज से मैं पूर्ण सत्य के आदर्श को मान्य करता हूं। मन, वचन और शरीर से आजीवन झूठ बोलूंगा नहीं, असत्य को प्रोत्साहन दूंगा नहीं और असत्य पूर्ण आचरण करने वालों को कभी अच्छा नहीं समझूंगा।

(३) आज से मैं महाव्रत के अचौर्यव्रत को ग्रहण करता हूं। आजीवन कभी मन, वचन और शरीर से चोरी करूंगा नहीं, चोरी को प्रोत्साहन दूंगा नहीं और चोरी करते हुए को तनिक भी अच्छा नहीं समझूंगा।

(४) आज से मैं पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार करता हूं। मन वचन और शरीर से मैथुन सेवूंगा नहीं, सेवाऊंगा नहीं, और सेवन करने वालों को कदापि अच्छा नहीं समझूंगा।

(५) आज से मैं पूर्ण अपरिग्रहवाद का सैनिक-नियम शिरोधार्य करता हूं। मन, वचन और शरीर से परिग्रह का सेवन करूंगा नहीं कराऊंगा नहीं और करते हुए को मैं कभी अच्छा नहीं समझूंगा।

(६) विशेष—(क) उपरोक्त महाव्रतों को सहर्ष स्वीकार करने के साथ अहिंसा विधान के अनुसार मैं रात्रि आहार और पानी का भी आजीवन त्याग करता हूं। साथ ही संगठन के सभी नियमों और अनुशासन को मानने की प्रतिज्ञा करता हूं।

दीक्षार्थी की उपरोक्त प्रतिज्ञाएं कितनी उत्कृष्ट महत्त्वाकांक्षाओं को लिये हुए हैं। जिसके अनुसार वह न सिर्फ अपना स्वार्थ, मोह और इच्छाएं त्यागने की घोषणा करता है वरन उसके साथ वह एक महान् आत्म—सेवी, लोक सेवी और प्राणी मात्र के कल्याणार्थ अपने त्यागमय कदम का नव-उद्घाटन करता है। जो समाज-सेवा और राष्ट्र-सेवा से कहीं अधिक उज्वल अहिंसावाद के विकास में अपना आत्मोत्सर्ग करता है। जिसके उगते हुए सूर्य का कौन अभिनन्दन नहीं करेगा। यह न सिर्फ व्यक्ति के कल्याण के लिये, पर विश्व की नैतिक संस्कृतियां और सत्य सुरक्षित रहे, इसलिये भी आवश्यक है। अस्तु ऐसी विशुद्ध अहिंसात्मक पद्धति के अनुसार, त्याग की कसौटी पर परीक्षित चरित्र प्रधान संस्था के लिये दीक्षा का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है और उसका उपयोग भी अत्यन्त असाधारण है।

भारत की एक आदर्श संस्था

१२

सामुहिक उत्तरदायित्व

संस्था में दीक्षित सभी सैनिक संस्था के प्रति सामुहिक उत्तर-दायित्व का पालन करते हैं। अपना व्यक्तित्व वह संस्था का व्यक्तित्व मानते हैं और अपना सर्वस्व अर्थात् मन, वचन और शरीर भी संस्था को सम्पर्ति कर देते हैं और संस्था की उन्नति में अपनी उन्नति तथा अपनी प्रगति में संस्था की प्रगति समझते हैं। इसका एक सुन्दर उदाहरण उस समय देखने को मिलता है, जब प्रचार के लिये विचरित सैनिक सैनिकाएं अपना कार्य समाप्त कर आचार्य की सेवा में प्रस्तुत होते हैं, तब वह यह सम्बोधित कर अभिवादन करते हैं कि—"आचार्य! यह संस्था की दी हुई सब चीजें प्रस्तुत हैं। साहित्व, पोथी, पातरे और यहां तक कि मेरा शरीर भी प्रस्तुत है। जिस में मेरा कुछ अधिकार नहीं, वरन् सब आपका अर्थात् संस्था का है।" आचार्य उनके अभिवादन को स्वीकार करते हैं और आवश्यक निर्देश करते हैं। तब वह संस्था के जनतन्त्रात्मक नियमानुसार भीतर प्रवेश करते हैं। संस्था को वह एक धर्म—शासन मानते हैं और आचार्य को वह अपना शासनपति। जिनकी आज्ञा में सब व्यक्तिगत व सामूहिक जिम्मेदार रहते हैं। अपनी व्यक्तिगत ज्ञान या साहित्य—सम्पति कुछ नहीं, सब शासन और शासनपति की

है और मेरा व्यक्तित्व सब कुछ शासन का है, । क्योंकि उसी के प्रति मेरा कर्त्तव्य और दायित्व है । जिसने मेरा आत्मनिर्माण किया है । यहभाव कितनी उच्चता और सुन्दरता को लिये हुए है ।व्यवस्थित धर्म पंचायत अर्थात् प्रजा तन्त्र की एक आदर्श साधना है और जिसके वह सुयोग्य साधक हैं । अपने व्यक्तित्व को विश्व साधना और धर्म प्रचार में अनेकों के लिये मिला देना कोई साधारण बात नहीं है । आज का उगता हुआ प्रजातन्त्र इसी लक्ष्य की ओर बढ रहा है, जिस ओर कि संस्था १८५ वर्षों से आदर्श संगठन की अनिवार्यता को स्वीकार कर आदर्श ढंगसे अनुकरण कर रही है । यह संस्था के संस्थापकों और संचालकों की एक संगठनोपयोगी महत्वपूर्ण सूझ का सुपरिणाम है ।

१३

आदर्श समाजवाद

संस्था की सबसे बडी विशेषता है कि सब एक नेतृत्व में एक साथ एक कार्यक्रम और एक कर्तव्य का पालन करते है। अपना काम सब एक श्रणी में एक मजदूर की तरह करते हैं। अपने नित्य दैनिक क्रम का पालन वृद्ध से लेकर बालक तक सब समान रूप से करते हैं। किसीके साथ कोई परहेज नहीं, छूत छात नहीं, वरन् सब एक साथ खाते और पानी का उपयोग करते हैं। कपडा सब समान रखते हैं, कोई ज्यादा नहीं।

भारत की एक आदर्श संस्था

आचार्य तक नहीं। आहार जितना आता है,-उतना सब सामान रूप से वितरण कर लेते हैं। पक्षपात नहीं और न इसका कहीं नाम ही सुनने को मिलता है। विद्वान हो या कलाकार सबको संस्था की मजदूरी करना आवश्यक होता है। उदाहरण के लिये कलाकार का काम केवल कला का निर्माण करना है, लेकिन उन्हें भी आहार आदि के लिये तो नियमानुकूल काम करना आवश्यक है। व्यक्ति विद्वान होते हुए भी पहले वह संस्था के उद्देश्य में सैनिक है, मजदूर है और फिर विद्वान है। सब के लिये हर व्यवहार और आदर्श में समानता के नियम लागू है। प्रतिष्ठा व नेतृत्व की अधिक जिम्मेदारियों के कारण एक आचार्य को प्रायः कुछ कामों में स्वतन्त्रता है, तथापि आचार्य को अपना नित्य क्रम व कई बडे बडे काम स्वयं ही करने होते हैं। साधारण सैनिक से लेकर असाधारण उत्तरदायित्व पूर्ण कार्य भी जिसको करना वह अपना अनिवार्य कर्त्तव्य और गौरव समझते है। सामूहिक उत्तरदायित्व के बाद समाजवाद का यह कितना सुन्दर उदाहरण है।

संस्था में प्रवेश होने के बाद जाति, गौत्र या कुल के नाम से किसी का कोई अपमान व सम्मान नहीं कर सकते वरन सब एक होकर एक साथ अपने रहन सहन का पालन करते हैं। किसी के साथ कोई भेद भाव, पक्षपात या दो दृष्टि नहीं वरन

सब एक सूत्र में एक कार्य के लिये संगठित और अनुशासित हैं
हां, विनय और नम्रता का अवश्यमेव एक महत्वपूर्ण स्थान है।
छोटे बडे व जाति पांति के कारण किसी का अनादर करने या
कोई दुर्भाव लाने पर आचार्य उन्हें प्रायश्चित देते हैं। इस तरह
इसमें समाजवाद की भी एक प्रगति मिलती है।

अमीरी व गरीबी का कोई स्थान नहीं और न इसकी यहां
कोई जरूरत ही है। धन छोड करके कोडी मात्र कुछ रखते
नहीं। मकान, सम्पति, जायदाद या पुस्तकें आदि किसी का भी
किञ्चित मात्र परिग्रह रखना अपने उद्देश्य के प्रतिकूल समझते हैं।
पास में कोई अधिक भार भी नहीं। हस्तलिखित साहित्य सूत्र
व पातरी आदि सैनिक–नियम के अनुसार जितना वहन कर
सकते हैं उतना ही वह रखते हैं। संस्था के सैनिक अहिंसात्मक
दृष्टि से परिग्रह मात्र का विरोध करते हैं।

कोई मन्दिर भी नहीं, और न मन्दिर या मकान आदि अपने
लिये बनाते, न प्रोत्साहन देते वरन् जो साधुओं के लिये ऐसा
करते हैं, वहां भूलकर भी नहीं निवास करते हैं।

और तो और रात को पानी का एक बून्द भी नहीं रखते
हैं। स्याही तक नहीं। अस्तु अत्यन्त कठोरता के साथ परिग्रह
मात्र से दूर रहते हुए विशुद्ध अहिंसात्मक समाजवाद का पालन
करते हैं। जो सब से अधिक जीवन-विकास की सत्य सासना है।

१४
भिक्षा

भिक्षा के विषय में कई मत भेद हैं। कुछ लोगों की मान्यता है कि भिक्षा का प्रचार देश के लिये घातक है और वह कतई बन्द हो जाना चाहिये। जहां तक बेकारी को दूर करने, भिखमंगों की बढती हुई बाढ को रोकने आदि समाज-निर्माण का महत्व-पूर्ण प्रश्न है, वहांतक तो हम इस बात से सहमत हैं कि शिक्षा के नामपर फैल रही असदाचार पूर्ण वृति और बेकारी को मिटाने का भरसक प्रयत्न किया जाय। लेकिन जो विशुद्ध अहिंसात्मक दृष्टि से भिक्षा का आदर्श अपनाये हुए हैं। उनको भी भिखमङ्गों में मान लेना सर्वथा असंगत है।

भारत की एक आदर्श संस्था

'भिक्षावृत्ति' का उद्देश्य अध्यात्मिक सैनिक के लिये रोटी नहीं मिलने से साधु वेष और पेशे का ग्रहण करना नहीं वरन् धार्मिक—विधान के अनुसार सत्य और सदाचार का प्रसार करते हुए अपने कर्त्तव्य और आदर्श का पालन करना है, जो अत्यन्त दुस्तर हैं।

यदि पेट पूजा ही अहिंसक साधुओं का लक्ष्य होता तो वह अपनी लाखों की सम्पत्ति, ऐश्वर्य और सुखोपभोग को छोडकर त्याग और साधना के बीहड पथ को क्यों अपनाते? अपनी व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा और स्वार्थों की बलि देकर प्राणी मात्र की सेवा और आत्म—निर्माण में अपने जीवन को विलीन क्यों करते? सुख और आराम की सेज को लात मार कर कष्ट और बाधाओं को क्यों कर निमन्त्रण देते? और अपनी विशाल अट्टालिकाओं को छोडकर साधना के लिये नंगे पैर और खाली हाथ घर घर की भिक्षा क्यों मांगते? इससे स्पष्ट है कि सत्य-साधना से प्रेरित उचित भिक्षा सामाजिक नहीं, वरन धार्मिक है और वह एक आदर्श रूप में वन्दनीय है!

अस्तु संस्था के सैनिक आत्म—साधना के साथ उचित और वैध उपायों से भिक्षावृत्ति करना एक आवश्यक कर्त्तव्य समझते हैं लेकिन भिक्षा के लिये उन्ही घरों में प्रवेश करते हैं जहां, मांस, मद्य शराब और मादक वस्तुओं का सन्देह नहीं, क्यों कि वह इन चीजोंसे वन्चित रहते हैं।

ऐसी भिक्षा को वह कदापि ग्रहण नहीं करते हैं; जो उनके लिये बनाई गई है। जिसके लिये वह गृहस्थी से जांच पडताल करते है और इसमें पूर्ण विश्वास होजाने पर ही वह भिक्षा को अंगीकार करते है।

किसी भी गांव में जाने पर वह अपने दैनिक व्याख्यान में वह आम घोषणा कर देते है कि— कोई गृहस्थी साधुओ के किसी प्रकार का आहार—आरम्भ नहीं करें, अन्यथा इस प्रकार का आहार हमारे लिये सर्वथा निषेधात्मक होगा।

भिक्षा उन्हीं की लेते है—जो अपने परिवार के लिये ही बनाई गई है और इसका कुछ अंश साधुओं को दान करने की सद्भावना रखते है और बाद में वह और नहीं बनाने का संकल्प करते हैं।

इस प्रकार पानी भी कचा नहीं लेते हैं, वरन् स्नान के लिये पहले से गरम बचा हुआ धोवण या पक्का राख का पानी लेते हैं। आहार का संयोग तो प्रायः सब जगह मिल जाता है, पर इस प्रकार के पानी के लिये साधुओं को बहुत कष्ट सहन करना होता है और कहीं कहीं तो बडी बाधाएं प्रस्तुत होती है, लेकिन फिर भी वह गर्मी और प्यास की व्याकुलता को सहकर भी अपने सैनिकधर्म पर अडिग रहते हैं।

१५

आहार व्यवस्था

आहार करने के लिये सैनिकों के पास कोई थाली, कटोरी या गिलासें नहीं होती और न कलई, पीतल, चीनी या कांच आदि के बर्तन होते है। वरन् लकडी की परिमाण मात्रा में ३-४ पातरियां होती हैं। जिसमें ही वह सब तरह का आहार लाते हैं। जिसका प्राय: मिश्रण होजाता है। पानी भी एक पातरी में रहता है और उसी में सैनिक खाते पीते और पेट भर लेते है। जिस स्थान में बैठ कर अपना आहार करते है, उस जगह को वह इस तरह साफ कर देते है कि—मक्खी तो क्या, यह माल्म नहीं पडे कि यहां आहार हुआ है। आहार पानी आवश्यकता-नुकूल ही लाते है और उसका दुरुपयोग नहीं करते। आहार करते वक्त पूर्ण सावधान रहते है और वैसा ही आहार करते हैं, जो सर्व साधारण हो। इस प्रकार इनकी आहार व्यवस्था से भी हम काफी शिक्षा ले सकते हैं। संस्था के वार्षिकोत्सव में ५०० से अधिक अधिक सैनिक सैनिकाए एक साथ आहार करतें हैं। पर किञ्चित भी अशान्ति, आहर व अव्यवस्था नहीं होने पाती। वरन् निश्चित समय पालन के साथ एक महान शान्ति और सुव्यवस्था का असाधारण आभास मिलता है।

१६

आत्म-स्वावलम्बी

संस्था अपने लक्ष्य में कितनी स्वतन्त्र और उसके सैनिक अपने कर्तव्य पालन में कितने आत्म-स्वावलम्बी हैं, इसका एक अनूठा चित्र यहां देखिये—

भारत की एक आदर्श संस्था

(१) संस्था या उसके सैनिकों के लिये कोई मट्ठ मन्दिर, मकान, कुटी या कार्यालय नहीं, और न इसका रखना व बनाना जैन साधुओं के लिये उचित है।

(२) साधु जहां ठहरते हैं, वहां मकान मालिक, संरक्षक या अधिकारी की आज्ञा लेकर ठहरते हैं।

(३) साधु—रुपया जर, जेवर, जायदाद या किसी प्रकार की सम्पत्ति अपने पास नहीं रखते और न इसकी वह कभी आवश्यकता ही समझते हैं।

(४) रेल, मोटर, साइकिल, ऊंट, गाडी आदि किसी प्रकार की सवारी का उपयोग कदापि नहीं करते। नंगे पैर पैदल विचरते और हजारों माइल धर्मोपदेश देते हुए विहार करते हैं।

(५) रंग रङ्गीले और छैल छबीले वस्त्र नहीं रखते, वरन् शुद्ध सफेद कपडे पहनते और चमडे का उपयोग नहीं करते हैं।

(६) प्रत्येक साधु वर्षभर में ५९ गज से अधिक कपडों का इस्तेमाल नहीं करते और साध्वियां ३४ गज से अधिक नहीं।

(७) साधु—गांजा, भङ्ग, बीडी, सिगरेट, चिलम, शराब मांस आदि किसी भी मादक वस्तु का उपयोग नहीं करते वरन् उसका बहिष्कार करते हैं।

(८) इंजेक्शन, आपरेशन आदि में डाक्टरों की सहायता नहीं लेते। धर्मार्थ दवाइयां तथा सरकारी अस्पतालों की दवाइयां ग्रहण नहीं करते।

(९) ड्रेस्सन व चित्रकला आदि के लिये हिंसामय वैज्ञानिक साधन काम में नहीं लाते, वरन् सब हाथों से काम करते हैं।

(१०) सिलाई के लिये दर्जी और धुलाई आदि के लिये धोबी की सहायता नहीं लेते वरन् खुद करते हैं।

(११) हजामत के लिये किसी नाई या उसकी मशीन का उपयोग नहीं करते, वरन् स्वयं केश-लुञ्चन करते हैं।

(१२) पातरी आदि की रंगाई स्वयं हाथों से करते हैं।

(१३) छपाई आदि के लिये प्रेस का उपयोग नहीं करते वरन् स्वयं प्रेस के मानिन्द साहित्य सुसंकृत करते है।

(१४) जिल्द बधाई और लेखो की सुरक्षा के लिये पुट्ठों आदि का उद्योग भी स्वयं करते है।

(१५) लेटरिन आदि का उपयोग नहीं करते और न इस को वाञ्छनीय समझते हैं।

(१६) अपना वजन मजदूर की तरह स्वयं ढोते हैं। किसी आदमी, कुली या सवारी का उपयोग नहीं करते।

(१७) अपना काम स्वयं करते हैं। किसी गृहस्थ या आदमी से कोई काम नहीं लेते और न सहकारी, नोकर आदि रखते हैं।

१७

महिला—ब्रिगेड का आदर्श

आत्म—स्वालम्बन के नियमों का दोनों समान रूप से उपयोग करते हैं। यहां हम महिला समाज की दृष्टि से महिला ब्रिगेड के कुछ आदर्श प्रस्त करते हैं।

(१) महिला—ब्रिग्रेड की कोई सैनिको पर्दा नहीं रखती हैं वरन निःसंकोच रूप से अपना चरित्र पालन करती हैं।

(२) शुद्ध सफेद वस्त्रों का व्यवहार करती हैं और अत्यन्त सादगी से रहती हैं।

(३) साहित्य, लेखन, एवं स्वावलम्बन आदि उद्योगों में कुशल होती हैं और ज्ञान में प्रगतिशील रहती हैं।

(४) सार्वजनिक प्लेटफार्म पर व्याख्यान देती हैं और शुद्ध आत्म—ज्ञान की प्रेरणा करती हैं।

(५) पञ्च महाव्रत का पालन करती हैं और शुद्ध चरित्र द्वारा अपने त्याग का आदर्श उपस्थित करती हैं।

१८

व्यवस्थित जीवन और दैनिक क्रम

संस्था का सैनिक जीवन अत्यन्त व्यस्थित और दैनिक क्रम से ओत प्रोत रहता है। एक एक क्षण को व्यर्थ न गंवा कर उसका कितना बहुमूल्य उपयोग करते हैं। देखिये प्रतिदिन की एक तालिका:—

प्रातःकाल ४ से १०

(१) जागरण (२) आचार्य—अभिवादन (३) स्वाध्याय (४) प्रतिक्रमण (५) आलोचना (६) अभिवादन (७) वस्त्रादि निरीक्षण

सूर्योदय के बाद महिला ब्रिगेडकी सैनिकाएं आती हैं और आचार्य को अभिवादन देती हैं।

(८) पञ्चमी (९) स्वाध्याय और व्याख्यान

मध्याह्न ११ से ६

(१०) भिक्षा-विहार (११) गत-दिवस-वार्ता (११) आहार (१३) स्वाध्याय और लेखन (१४) वस्त्र व पात्रादि—निरीक्षण (१५) आहार (१६) पञ्चमी (१७) स्वाध्याय और सेवादि (१८) दैनिक क्रम से निवृत होने की सूचना (१९) रात्री-त्याग

सायंकाल ६ से९

(२०) सायंकालीन—वन्दना (२१) प्रतिक्रमण (२२) आचार्य अभिवादन (२३) प्रार्थना (२४) ज्ञान—चर्चा या व्याख्यान (२५) शयन

नोटः—कार्यक्रम के मुख्य भागों की सूचना आचार्य श्री की आज्ञा द्वारा होती है।

अनिवार्य—सब सैनिक और सैनिकाओं को तालिका के अनुकूल चलना आवश्यक होता है। प्रचार के लिये विचरित दलों का भी प्रायः यही कार्यक्रम रहता है। उन दलों के सैनिक भाव पूर्वक आचार्य अभिवादन के बाद वह अपने दल के नेता को भी अभिवादन करते है प्रचार के लिये सैनिक और सैनिकाओं के दल पृथक पृथक होते हैं और दो दलों कोप्रायः एक साथ एक जगह के लिये (कुछ नियत स्थानों को छोडकर) नहीं भेजते।

व्यवस्थित सैनिक-जीवन की दृष्टि से एक सबसे अच्छा नियम यह है कि बीमारी, कारण या वृद्धावस्था को छोडकर सैनिक सैनिकाओं को दिन में विश्राम करना सर्वथा असंगत करार दिया है। जिससे सब अपने कार्य में व्यस्त रहते हैं और समय को व्यर्थ नहीं गंवाते।

समय की सदुपयोगिता और कार्य की सुव्यवस्था का यह बहुत ही ध्यान रखते हैं। प्रत्येक कार्य में वह सावधान और सचेत रहते हैं और अपने उद्देश्य, कार्यक्रम तथा उत्तरदायित्व के लिये प्रति पल सावचेत रहते हैं। यही सबसे बडा आदर्श है।

भारत की एक आदर्श संस्था

१९

स्पष्टीकरण

गत अध्याय में कार्यक्रम की जो तालिका दी है, उसमें कई शब्द ऐसे हैं जो आम प्रचलित नहीं हैं। इसलिये सर्व साधारण की जानकारी के लिये उन शब्दों का संक्षेप में स्पष्टीकरण करना उपयुक्त होगा।

(१) जागरण—जागने को कहते हैं।

(२) आचार्य-अभिवादन—अपने आचार्य को नमस्कार करना।

(३) वस्त्र-पात्रादि-निरिक्षण—अपनी असावधानी से रात्री या दिन में कोई सूक्ष्म हिंसा नहीं होगई है, अस्तु वस्त्र और पात्रादि को देखना। [दिन में दो वार देखते है।]

(४) प्रतिक्रमण—सद् प्रवृति में रहते हुए यदि असत् प्रवृति का कोई कार्य हो गया हो तो पुनः सत् प्रवृति में लोट आने के लिये किये जाने वाले प्रायश्चित को प्रतिक्रमण कहते हैं।

(५) आलोचना—अपनी असावधानी के कारण यदि कोई दोष लग गया हो तो आचार्य से प्रायश्चित या दण्ड लेना।

(६) स्वाध्याय—धार्मिक अध्ययन और मनन को कहते हैं।

(७) **पञ्चमी**—शौच से निवृत होने के लिये जंगल में जाने को कहते है।

(८) **भिक्षा**—अध्याय १४ में स्पष्ट किया है।

(९) **व्याख्यान**—धार्मिक-भाषण और सभा को कहते है। [भाषण सार्वजनिक होता है]

(१०) **गत-दिवस-वार्ता**—सभी सैनिक गत दिवस की अपनी आत्म कहानी आचार्य को सुनाते-है।

(११) **आहार**—भोजन करने को कहते हैं।

(१२) **दैनिक क्रम से निवृत होने की सूचना**—सन्ध्या होने की सूचना मिलती है। इस लिये सब सैनिक अपने दैनिक कार्य से निवृत होजाते हैं। स्याही आदि को कपडे में भीगो कर सुखा डालते हैं। स्याही का पानी रखना भी रात्री को आमान्य है। सैनिकाएं इस सूचना के पूर्व ही अपने कम्पाउंड में कूच कर जाती हैं। रात्रि को एक मकान में रहना सर्वथा निषेद्ध है।

(१३) **रात्री-त्याग**—सभी सैनिक सैनिकाएं सन्ध्या होते ही रात्रि के लिये आहार पानी का त्याग कर लेते है।

(१४) **वन्दना**—आचार्य अभिवादन को कहते है।

(१५) **ज्ञानचर्चा**—धार्मिक शिक्षा व प्रश्नोत्तर को कहते है।

(१६) **प्रार्थना**—यह सन्ध्या का एक आवश्यक कार्य-क्रम है। जिसमें साधारण जनताभी भाग लेती है। ॐ जयजय अभिनन्दन, के गगनभेदी स्वरों से एक अहिंसात्मक प्रवाह फूट पडता है।

२०

साप्ताहिक-अधिवेशन

आचार्य के नेतृत्व में प्रति वृहस्पतिवार को संस्था का साप्ता-हिक अधिवेशन होता है, जिसको हाजरी कहते हैं। अधिवेशन की कार्यवाही प्रायः दिन में १॥ बजे प्रारम्भ होती है। सर्व प्रथम अधिवेशन का उद्घाटन करते हुए संस्था के उद्देश्यों पर आचार्य का एक असाधारण प्रवचन होता है। जिसमें वह सर्व साधारण को आह्वान करते हुए उद्घोष करते है कि अमुक लक्ष्य के कर्त्तव्य पालन में संस्था या संस्था के सदस्यों का कोई दोष प्रतीत हो तो उसे जताना प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य है। इससे प्रकट होता है कि संस्था अपने उद्देश्य में कितनी जिम्मेदार है। अपने मुख्य अभिभाषण के बाद आचार्य सब सदस्यों को संस्था के प्रति अपनी नियमावक प्रतिज्ञाओं को दोहराने का निर्देश करते है, जिसको सामुहिक रूप से सब सअभिवादन मान्य करते हैं। यदि किसी को कोई आपत्ति है तो, वह उसे प्रकट करने के लिये स्वतन्त्र है। प्रचार के लिये विचरित दलों को माह में दो बार अधिवेशन मनाने का आदेश है। जिसको वह अपने दलपति के नेतृत्व में प्रति पक्ष के प्रायः अन्तिम दिन मनाते हैं और आम सभा में शासन की प्रतिज्ञाओं को अत्यन्त उत्साह और तत्परता पूर्वक दोहराते हैं।

२१
वार्षिक-अधिवेशन

वर्ष में एक बार माघ शुक्ला ७ को संस्था का वार्षिक अधिवेशन होता है। माघ में आयोजित होने से इसे माघ महोत्सव भी कहते है और मर्यादा-महोत्सव भी। इस अधिवेशन में विशेष आज्ञा प्राप्त सदस्यों को छोडकर सभी सैनिक-सैनिकाएं अधिवेशन के पूर्व उपस्थित हो जाते हैं और आचार्य के सम्मुख अपने प्रचार के कार्य का विवरण प्रस्तुत करते हैं। वार्षिक अधिवेशन होने के कारण देश—प्रदेश से हजारों दर्शक दर्शनार्थ आते हैं। इसलिए अधिवेशन एक विशाल जन व्यापी समूह में अत्यन्त आकर्षक और रोचक हो जाता है। स्त्री और पुरुषों की

दो बड़ी गेलरियां ठसा ठस भर जाती है । लेकिन आश्चर्य यह है कि इतने विशाल जन व्यापी समूह में एकदम शान्त वातावरण रहता है । क्षण मात्र के लिये अशान्ति फैल जाय तो एक आकर्षक व्यक्तित्व के प्रभाव से वह दूसरे ही क्षण दूर हो जाता है । निश्चित समय पर आचार्य के नेतृत्व में अधिवेशन का उद्घाटन होता है । अपने प्रमुख उद्घाटन भाषण में आचार्य संस्था के पूर्व इतिहास पर संक्षिप्त प्रकाश डालते हुए एक धारा-प्रवाहिक सन्देश देते हैं जिसपर समूचे जन समुदाय की आंखें लगी रहती हैं । इस अवसर पर प्रायः संस्था के सभी सैनिक और सैनिकाओं की हाजरी होती है उस समय का दृश्य अत्यन्त दर्शनीय होता है । शुद्ध सफेद वरदी से सुसज्जित सैंकड़ों सैनिकाओं की एक कतार इतनी सुन्दर जचती है कि मानों-मानवता की साक्षात् विभूतियां खड़ी हों । फिर उनकी स्वाभाविक सोजन्यता, सरलता और सौन्दर्यता जन साधारण को प्रभावित किये बिना नहीं रह सकती । इसी तरह सैनिकों की कतार भी आत्म बल का प्रचार करती है : दोनों कतारों के बन जाने पर आचार्य अपने हाथ के संकेत से सबको अपना सैनिक संकल्प दोहराने का आदेश करते हैं । जिसको सब सामुहिक रूप से दोहराते हैं और संस्था के प्रति अपनी अटूट श्रद्धा, कर्त्तव्य-परायणता और उतरदायित्वका आम परिचय देते हैं । यह समय भी अत्यन्त भाव-प्रवाहक होता है और उनके जीवन को नजदीक से

देखने का मौका मिलता है। अधिवेशन में अपनी संस्था के नव वर्ष के नव—उत्साह में कई संत कवि अपनी कविता करते हैं और कलाओं का परिचय देते हैं। साहित्यकार अपना गद्य पढते हैं। संतों से के अतिरिक्त कई दर्शक भी अपनी कविता में भाव अभिव्यक्त करते हैं। मुख्य अधिवेशन के बाद भी कुछ दिनों तक कविता और साहित्य की धारा चलती रहती है। अधिवेशन में आचार्य सैनिक—सैनिकाओं को धर्म प्रचारार्थ अपने अपने चतुर्मास का आदेश देते हैं। जिसे शिरोधार्यकर आचार्य के आदेशानुकूल सअभिवादन रवाना हो जाते हैं। संस्था के सभी सैनिक सैनिकाओं के सामुहिक-दर्शन के साथ एक विशाल दार्शनिक-समारह का परिचय हमें इस अधिवेशन में मिलता है और मिलता है भारत की एक शक्ति शाली आध्यात्मिक संस्था का सांस्कृतिक रूप, उसका ठोस कार्यक्रम और सुदृढ एकता, जो भारत में तो क्या विश्व में भी इतनी सुन्दर उदाहरण कठिनता से मिलेगी। संस्था का यह अधिवेशन इस प्रकार एक आध्यात्मिक प्रवाह का प्रचार करता है, धार्मिक जीवन को शक्ति शाली बनाता है और आचार्य के सन्देश में एक नवजीवन संचार करता है। इसलिये इस अधिवेशन का एक विशाल सांस्कृतिक और आध्यात्मिक महत्व है जो किसी भी धार्मिक संस्था के इतिहास में सम्भवतः नहीं मिलेगा।

भारत की एक आदर्श संस्था

२२

क्षमा—याचना

ऐसे तो प्रतिदिन अपने प्रतिक्रमण द्वारा संस्था के सभी सैनिक प्राणीमात्र से मैत्रीभाव प्रकट करते हुए क्षमा-याचना करते हैं, लेकिन महिने में दो बार प्रतिपक्ष के अन्तिम दिन सामूहिक रूप से संघ से क्षमायाचना करते हैं। सन्ध्या के प्रतिक्रमण में

अपने आन्तरिक हृदय से यह उद्घोषित करते है —कि मैं समस्त जीवों से क्षमा मांगता हूं और सब-जीव मुझे भी क्षमा दान दें। सब जीवों से मेरी मैत्री है किसी के साथ मेरा वैर नहीं नहीं है। इसके बाद आचार्य श्री से क्षमायाचना करते हैं। आचार्य भी उन्हें क्षमाते हैं। छोटे सैनिक बडे सैनिकों के पास जाकर कोमल स्वरों में क्षमायाचना करते हैं और बडे भी उनसे सहृदय क्षमा मांगते हैं। फिर सर्व साधारण जनता की बारी आती है। गृहस्थ भी सादर क्षमत् क्षामना करते हैं और साधु भी अपने क्षमा भावों को दोहराते हैं।

प्रातःकाल सैनिकाएं आती हैं और आचार्य श्री से सअभिवादन क्षमत्क्षामना के बाद सभी सैनिकों से क्षमत्क्षामना करती हैं। इस प्रकार क्षमत् क्षामना के यह दो दिन एक अपूर्व सांस्कृतिक मिलाप का दृश्य उपस्थित करते हैं। उस समय के दृश्य को देख कर सब आत्म—विभोर हो जाते हैं। अशुभ संयोगवश असद् भावनाओं में गोते खाने वाले प्राणी उस दिन के क्षमा प्रवाह में सद् प्रवृत्ति पर लौट आते हैं और एक दूसरे से मिलकर सब भूल जाते हैं। कितना सुन्दर हृदयग्राही सांस्कृतिक मेला है यह! जो प्राणीमात्र के प्रति सदभावों का संचार करता है और मानवता का दिग्दर्शन कराता है। इसका एक जनव्यापी रूप वार्षिक रूप में सम्वत्सरी पर देखने को मिलता है।

भारत की एक आदर्श संस्था

२३
नियम-भङ्ग की अवस्था में

अपने सैनिक–नियमों का पालन नहीं करने पर या उसमें शिथिलता अथवा कोई दोष हो जाने पर आचार्य उनको अनुशासन के विधान में लेते हैं। प्रारम्भ में उन्हें सुधार करने के लिये एक नियत अवसर देते हैं और तत्पश्चात् आवश्यक दण्ड भी। इन दोनों अवसरों के बाद भी अगर सुधार नहीं होता तो आचार्य उन्हें संस्था से पृथक होने का आदेश देते है। यदि वह पुनः संस्था में सम्मिलित होना चाहे तो आचार्य उसे उचित प्रायश्चित के बाद सम्मिलित कर सकते है।

अपनी शारिरिक मानसिक और नैतिक कठिनाइयों से असमर्थ होने पर यदि कोई अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं कर सके तो वहसंस्था को छोडने के लिए स्वतन्त्र हैं। चरित्र पालन स्वेच्छा और सद्भावना से है, जोर जवरदस्ती और अनिच्छा से नहीं, यह संस्था की दृढ मान्यता है।

२४

सार्वजनिक जीवन और संस्था के सदस्य

ऐसे तो संस्था और उसके सदस्यों का एक एक क्षण सार्वजनिक जीवन के निर्माण में होता है लेकिन वह अपने उद्देश्यों के अनुकूल ही सार्वजनिक—जीवन के प्रति अपना दायित्व महसूस करते हैं।

संस्था की मान्यता है कि सार्वजनिक जीवन में जितने दुराचार, अनाचार और दुर्भाव फैलते है उसका मुख्य कारण व्यक्ति है। जो प्रतिकूल मार्ग द्वारा अपने जीवन को बर्बाद करने के साथ साथ सार्वजनिक जीवन के प्रति भी अनुत्तरदायी होते है। इसलिए संस्था के सदस्य व्यक्तित्व निर्माण की ओर अधिक जोर देते है।

आत्म साधना और आत्म निर्माण ही इनके जीवन का लक्ष्य है। जिसका वे सार्वजनिक प्रचार करते हैं।

भारत की एक आदर्श संस्था

भारत से अपनी जन्मभूमि होने के नाते उन्हें मोह नहीं और न पर राष्ट्रों से द्वेष है। वरन् सभी राष्ट्रों को एक मानकर व्यक्ति निर्माण का प्रचार करते हैं—चाहे वह किसी जाति, देश और समाज का हो।

व्यक्ति से ही सृष्टि का निर्माण होता है इसलिए व्यक्ति को ही आत्म—सुधार की प्रेरणा करते है।

गरीब क्या प्राणीमात्र को अहिंसात्मक दृष्टि से देखते हैं। इसलिए अपने द्वारा जीवमात्र को भी शारीरिक, मानसिक वा वाचिक दुःख पहुंचने पर वे प्रायश्चित करते हैं और प्रतिपल अपने उद्देश्य के लिए सावधान रहते हैं।

जैन सिद्धान्तों द्वारा मानवता का प्रचार और निर्माण करना संस्था का एक अनिवार्य सार्वजनिक कर्त्तव्य है।

प्राणीमात्र के प्रति सद्भाव और मैत्री विचार फैलाना तथा अपने ढंग से वातावरण बनाना संस्था का खास उद्देश्य है।

धर्म को राष्ट्रीय प्रवाह में मिश्रण नहीं करते। वरन् उसको एक विश्व व्यापी सत्ता मानते हैं और राष्ट्र को राष्ट्र की जगह देखते हैं। तिसपर भी वह अपने उद्देश्यों को लेकर सार्वजनिक जीवन के प्रति अपना दृष्टिकोण, अपना आदर्श और कर्तव्य समझते हैं। संस्था की यही विशेषता है।

२५

वर्तमान नेतृत्व

संस्था का वर्तमान नेतृत्व आचार्य श्री तुलसी गणी के सुडौल एवं कुशल हाथों में सुरक्षित है। आप नवयुग के नव—सेनानी और प्रौढ़ विचारों के प्रगतिशील विचारक हैं। आपकी लब्ध प्रतिभा का परिचय तो इसी से मिल जाता है कि २२ वर्ष की अल्प आयु में ही आचार्य का महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व आपको वहन करना पडा। कार्तिक शुक्ला १ विक्रम सम्वत् १९७१ में आपका जन्म वीर भूमि मरूधरा के लाडनूं शहर में हुआ था। प्रारम्भ में ही आपकी प्रतिभा विशाल थी। अस्तु ११ वर्ष की असाधारण आयु में ही आप पौष कृष्णा ५ विक्रम सम्वत् १९८१ में भूतपूर्व आचार्य श्री कालू गणिराज के हाथों दीक्षित हो गये। साधारण सैनिक जीवन में आपने अपने स्वाध्याय के द्वारा काफी ज्ञान प्राप्त किया और अपनी तीव्र बुद्धि से "भिक्षु व्याकरण" आदि के तीस हजार श्लोकों को कंठस्थ कर अपनी अपूर्व शक्ति

शीलता का परिचय दिया। कविता और साहित्य की ओर आपकी विशेष रुचि थी। अतएव आपने इस क्षेत्र में अपनी अद्भुत प्रतिभा का परिचय दिया और कई सुन्दर ग्रन्थों का निर्माण किया। संस्कृत में भिक्षु–न्याय–कणिका, जैन सिद्धान्त दीपिका आदि और राजस्थानी भाषा में 'कालू–यशो विलास,' 'कालू–उपदेश प्रासाद' आदि बीसों ग्रन्थ आपके लिखे हुए (अप्रकाशित) हैं। जिस में न सिर्फ आपके व्यक्तित्व का आकर्षण मिलता है वरन् राजस्थानी साहित्य का अमूल्य संग्रह भी। जिसके द्वारा आपने शासन की अमूल्य सेवा की है। आप ११ वर्षों से आचार्य पद पर सुशोभित हैं। भाद्रपद शुक्ला ९ विक्रम सम्वत् १९९३ में उपरोक्त सम्माननीय पद पर सुशोभित हुए थे। तब से आप एक सुयोग्य शासक की तरह अपना महान् उत्तरदायित्व वहन कर रहे हैं। आप एक सुयोग्य अहिंसात्मक योद्धा हैं, जो एक विजयी सिंह की भान्ति महान् हैं जिन में अद्भुत प्रतिभा, आकर्षक व्यक्तित्व और असाधारण आदर्श हैं जो सभी विषयों में अत्यन्त कुशल हैं। विश्व की संस्कृतियों का जिन्हें असाधारण ज्ञान है और एक युवक हृदय होते हुए भी ज्ञान में अग्रगामी और एक क्रान्तिकारी नेता हैं और जिनके विशाल नेतृत्व में यह संस्था प्रगतिशील होकर अपना असाधारण विकास कर रही है और करती रहेगी।

भारत की एक आदर्श संस्था

२६

उपसंहार

इस प्रकार यह संस्था भारत के आध्यामिक निर्माण में ठोस काम कर रही है और जैन सिद्धान्तों द्वारा आत्म शान्ति का व्यापक सन्देश पहुंचा रही है। जैन धर्म से यह कोई पृथक संस्था नहीं है वरन् जैन तत्वों को संगठित, मर्यादित और आदर्श रूप में रखने तथा जैन धर्म के आत्म निर्माणकारी व्यापक उद्देश्यों का प्रचार करने के लिये यह अपने माने की एक आदर्श संस्था है। जिसका अहिंसात्मक संगठन एक निराले ढङ्ग का है, जिसकी आत्म प्रवृतियां विकसित हैं और जिसके सैनिक अजर अमर वीर धर्म के वीर पुजारी हैं। जिसके सिद्धान्त एक सूत्री कार्यक्रम में गूंथे हुए विश्व व्यापक है और जिनका चरित्र हमारे लिए आदरणीय और वन्दनीय है। संस्था, उसके चरित्र नायक और सैनिकों का एक एक कार्य हमारे लिए अनुकरणीय और उदाहरण स्वरूप है। मेरी विनम्र प्रार्थना है कि भारत वासी अपने वैज्ञानिक साधनों और विज्ञापनों से सवर्था दूर आत्म-निर्माणं कारी इस संस्था के सम्पर्क में आयें और निकट से अवलोकन करें तो उन्हें विदित होगा कि इसमें कितना सत्य और सार है। मानो एक अनुपम साधना है।

भारत की एक आदर्श संस्था